पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
भिंड, ता. ९-४-१९८९
श्री समयसार, गाथा ३५६-३६५, प्रवचन नंबर P १६

ये समयसारजी परमागम शास्त्र है उसका सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, ज्ञान का अधिकार है। सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार यानि द्रव्य सामान्य का अधिकार। और जो द्रव्य सामान्य शुद्धात्मा है, वो पारिणाम से सहित होने पर भी परिणाम से रहित है। परिणाम से सहित जानना व्यवहार है, परिणाम से सहित मानना अज्ञान है। और परिणाम से रहित जानना मानना सम्यक है। परिणाम मात्र से आत्मा भिन्न होने से आत्मा, परिणाम का कर्ता नहीं है, अकर्ता ज्ञायक है। ऐसी वो बात बहुत दिन से चली।

ऐसा जो अपना शुद्धात्मा है, उसका जानने का उपाय क्या है? ये कैसे जाना जाये? होने पर भी क्यों जानने में नहीं आता है? जगत को क्यों जानने में नहीं आता है? होने पर भी। उसका अस्तित्व तो है। क्या कहा? जैसे देह मन वाणी जानने में आता है, अंदर का क्रोध मान माया लोभ का परिणाम, सबको जानने में आता है, शुभाशुभ भाव भी जानने में आता है, हर्ष-विषाद का भाव भी जानने में आता है। क्योंकि वो है, अस्तिरूपे है, तो जानने में आता है। ऐसे जो देहादि की अस्ति हो वो जानने में आता है। तो देहादि से भिन्न परमात्मा अंदर विराजमान है वो भी है। जैसे देह भी है ऐसे आत्मा भी है, अस्तिरूप है। अस्तित्व नाम का उसका सामान्य धर्म है। अस्तित्व यानि होना, उसका होना ऐसा आत्मा का एक स्वभाव है।

पहले तो ये स्वभाव का निर्णय करना चाहिए। यथार्थ निर्णय के बाद जब प्रयोग का काल आता है, तब, वो ज्ञान की पर्याय में होने पर भी क्यों जानने में नहीं आता है? इसका कारण ज्ञान की पर्याय का व्यवहार अनंत काल से प्रगट हो रहा है। तो ज्ञान की पर्याय के व्यवहार में आत्मा जानने में नहीं आता है। ज्ञान की पर्याय का व्यवहार क्या और ज्ञान की पर्याय का निश्चय क्या? कि ज्ञान की पर्याय का व्यवहार इसका नाम कि जो ज्ञान देव-गुरु-शास्त्र का लक्ष्य करता है, वो ज्ञान की पर्याय का व्यवहार है। अर्थात जहाँ तक वो पर्याय आत्मा को नहीं जानती है, अकेली देव-गुरु-शास्त्र को जानती है, वो ज्ञान की पर्याय का नाम व्यवहार भी नहीं है, मगर अज्ञान है। ऐसे अनादि काल का अज्ञान चालू है, वो पक्ष हो गया उसको।

मैं पर को जाननेवाला हूँ, ऐसा अंदर में मिथ्या-अभिप्राय, मिथ्या-श्रद्धान पड़ा है। क्योंकि जैसा अनुभव है, उसकी श्रद्धा वैसा कर लिया। अनुभव क्या है? कि पर को जानता हूँ। क्योंकि इन्द्रिय ज्ञान का विषय परावलम्बी है, तो पर को प्रिसिद्ध करती है तो, पर को जाननेवाला हूँ - ऐसा श्रद्धान विपरीत भी हो गया। तो ज्ञान की पर्याय जब पर को जानती है उसका नाम व्यवहार है। तो ये व्यवहार जब उत्पन्न होता है, परालम्बी, पर को प्रसिद्ध करनेवाली ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है, उसमें शुद्धात्मा तिरोभूत हो जाता है। तिरोभूत यानि होने पर भी नहीं दिखाई देता है। अभी आत्मा है-ऐसा तो निर्णय किया कि मैं हूँ। मैं हूँ

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

फिर भी मेरे को मेरा शुद्धात्मा का दर्शन क्यों नहीं होता? मेरे से पहले अनंत आत्मा हो गया, उसने अपना अस्तित्व का ज्ञान करके उसमें लीन होकर परमात्मा हो गया। अनंत आत्मा सिद्ध हो गया। पहले वो ही आत्मा बहिरात्मा था, वो ही बहिरात्मा अंतरात्मा होता है, अंतरात्मा होने के बाद वो ही आत्मा परमात्मा हो जाता है।

आत्मा तो एक है, उसकी अवस्था क्रम-क्रम से तीन होती हैं। तीन अवस्था अक्रम से नहीं होती हैं। जब बहिरात्म दशा है अज्ञान, मिथ्यादर्शन, तब अंतरात्म दशा प्रगट नहीं होती है। और जब मैं पर को जानता नहीं हूँ, जाननहार जानने में आता है, ऐसा अंदर का बल जो आता है, तो उपयोग अभिमुख होकर आत्मा का दर्शन हो जाता है। तो बहिरात्म दशा गई, व्यय हो गया और अंतरात्म दशा प्रगट होती है। उसका नाम साधक है, उसका नाम साधक हो गया और ये अंतरात्म दशा भी थोड़े टाइम के लिये होती है, सादि सांत है। साधक दशा, शुरुआत होती है नया और बाद में उसका अंत होकर परमात्मा होता है। तो ये आत्मा का तीन प्रकार का परिणाम है - एक तो मिथ्यादर्शन आदि अज्ञान पर्याय बहिरात्म गई और मोक्षमार्ग प्रगट हुआ। आत्माश्रित निश्चय मोक्षमार्ग, यानि जो ज्ञान आत्मा का है उसको जाना, जानते-जानते वही मैं हूँ- ऐसी प्रतीति, श्रद्धान प्रगट हुआ और आचरण भी थोड़ा प्रगट हुआ, स्थिरता। उसका नाम मोक्षमार्ग प्रगट हुआ तो ये अंतरात्मा हो गया। और बाद में वही आत्मा परमात्मा हो जाता है।

तो ये अंतरात्मा होने की, होने के लिये क्या ज्ञान हो तो आत्मा को जाने, दर्शन करे? तो इधर प्रकरण चलता है कि ज्ञान की पर्याय का निश्चय क्या है। अनंत काल से उसने द्रव्य का निश्चय जाना नहीं और पर्याय का निश्चय भी जाना नहीं। और कभी ऊपर ऊपर से द्रव्य का निश्चय गुरुकृपा से आ जावे, तो एक दूसरा शल्य अनादि काल का खड़ा हो जाता है। कि मैं पर को तो जानता हूँ। पर को नहीं जानूँ तो स्वपर को तो जानता हूँ। आहाहा! अनुभव के पहले परप्रकाशक ज्ञान भी अज्ञान है और अनुभव के पहले स्वपर-प्रकाशक ज्ञान भी अज्ञान है। आहाहा! अनुभव के पहले.. । जो निगोद में स्वपर-प्रकाशक की ज्ञप्ति है। स्वपर का प्रतिभास होता है, ज्ञान की स्वच्छतामें उपयोग लक्षण में।

ऐसे जब गुरु मिले, गुरु को शिष्य ने पूछा कि प्रभु आपकी कृपा से दृष्टि का विषय तो ज्ञान में आया, ज्ञान में आया यानि जानने में आया कि मेरा शुद्धात्मा बंध मोक्ष के परिणाम से रहित है। सर्वथा रहित है? हाँ सर्वथा रहित है। पहले सर्वथा में आ जाये तो कथंचित् भी बाद में आता है। आहाहा! मगर पहले सर्वथा से अभिन्न माना, बाद में, जैन दर्शन में आया तो कथंचित् अभिन्न में रहा। पर सर्वथा भिन्न तक आत्मा पहुँचा नहीं तो अनुभूति नहीं होती है। आहाहा!

ऐसे जब सर्वथा में मेरा आत्मा परिणाम मात्र से भिन्न है, ऐसे गुरुकृपा से अनुमान ज्ञान में आया, आत्मा आया। अनुमान ज्ञान में अनुमान ज्ञान नहीं आया। क्या कहा? अनुमान ज्ञान की जो मानसिक पर्याय है, मन के द्वारा आत्मा का कि मन वड़े आत्मा ने कड़ी ल्ये छे, कड़ी ल्ये छे, इसका अर्थ जाणी ल्ये छे (जान लेता है), गुजराती। आहाहा! तो ऐसे गुरुकृपा से, अपनी योग्यता और गुरुकृपा, तो ये दृष्टि का विषय, दृष्टि में आने के पहले मानसिक ज्ञान में आ जाता है। और आने के बाद उसको साक्षात करने के लिये मानसिक ज्ञान काम आता नहीं है। इसके लिये तो ज्ञान की पर्याय का निश्चय प्रगट होना चाहिए। तो ज्ञान की पर्याय का निश्चय क्या है? और ज्ञान की पर्याय का व्यवहार क्या है, वो बाद में आयेगा। ज्ञान की

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

पर्याय का निश्चय जिसको आता है, उसको साक्षात आत्मा की अनुभूति होती है। ज्ञान की पर्याय में व्यवहार खड़ा होता है, तहाँ तक आत्मदर्शन होनेवाला नहीं है।

द्रव्यलिंगी मुनि हो जाये, नग्न दिगंबर मुनि। मुनि हं मेशा नग्न होता है। कपड़ेवाला मुनि होता नहीं है। आहाहा! तो ऐसे नग्न मुनि हो जाये, राजपाट छोड़कर, 5 महाव्रत 28 मूलगुण निरतिचार। आहाहा! जिसमें कोई दोष न लगे ऐसी सहज दशा हो, ऐसा होने पर भी, जहाँ तक उसके पास ज्ञान की पर्याय का निश्चय प्रगट नहीं होता है। पांच महाव्रत को जाननेवाली ज्ञान की पर्याय तो व्यवहार है। नग्नता को जाने, नग्न को, उसकी ज्ञान की पर्याय का नाम व्यवहार है। देव, गुरु, शास्त्र को जाने उसका नाम भी व्यवहार है। आहाहा! पर्याय को जाने उसका नाम भी व्यवहार है। गुण भेद को जाने उसका नाम भी ज्ञान की पर्याय का व्यवहार है। ऐसी ज्ञान की पर्याय अनंत अनंत अनंत काल से प्रगट हो रही है। ज्ञान की पर्याय का व्यवहार प्रगट हो रहा है। आज तक अनादि मिथ्यादृष्टि के लिए ज्ञान की पर्याय का निश्चय एक समय के लिए प्रगट हुआ नहीं है। वो ज्ञान की पर्याय का निश्चय क्या है, इसके स्वरूप की चर्चा चलती है। देखो!

अब ज्ञायक जाननेवाला और जानने में आनेवाला ये पुद्गल, वो भूल है। जाननेवाला भी आत्मा और जनाने(जानने में आने) वाला भी आत्मा। आत्मा ही ज्ञायक और आत्मा ही ज्ञेय, वो भी व्यवहार है। आत्मा ज्ञाता और पुद्गल द्रव्य मेरा ज्ञेय वो अज्ञान है, व्यवहार भी नहीं है। आहाहा! क्योंकि निश्चय के पहले व्यवहार प्रगट होता नहीं है। आहाहा! आत्मा का पक्ष आता है, तो भी अनुभूति नहीं होती है। तो कोई गाँव का, कोई संस्था का, कोई व्यक्ति के पक्षपात में चढ़ जाये, तो तो दिल्ली बहुत दूर है। आहाहा! वो तो प्रमाण से बाहर निकल गया। कोई संस्था के साथ मेरा संबंध नहीं है। आहाहा! भिण्ड संस्था हो, भिण्ड की, जयपुर की संस्था हो कि सोनगढ़ की संस्था हो, आहाहा! किसी के साथ मेरा संबंध नहीं है। आहाहा!

मैं आत्मा हूँ ऐसा पक्ष में भी अनंतानुबंधी कषाय का दोष उत्पन्न होता है। तो पर के पक्ष की बात तो, आहाहा! ऐसा सुअवसर आया है, तो जीव पक्षपात में चढ़ गया। आहाहा! अपना अहित हो जाता है, उसको मालूम नहीं। आहाहा! पक्षपात में राग द्वेष उत्पन्न होता है। मध्यस्थ ज्ञान में वीतराग भाव प्रगट हो जाता है। आहाहा! तो बाहर की बात तो दूर रहो, इधर तो आचार्य भगवान फरमाते हैं कि जो ज्ञान परिणाम को, भेद को। परिणाम का नाम ही परद्रव्य है, अध्यात्म में तो परिणाम का नाम ही परद्रव्य है। उसको जाने वो भी व्यवहार है। वो निश्चय ज्ञान की पर्याय प्रगट नहीं होती है।

तो '**ज्ञायक चेतयिता, ज्ञेय जो पुद्गलादि परद्रव्य उसका है या नहीं**?' जो ये पुद्गल है तो उसका है ज्ञायक, उसको जाननेवाला है कि नहीं? उसका है कि नहीं। '**इस प्रकार यहां उन दोनों के तात्विक संबंध का विचार करते हैं।**' ज्ञाता और ज्ञेय। ज्ञाता भी इधर है और ज्ञेय भी इधर है। उसका दो भेद करना वो भी अज्ञान है। मैं ही ज्ञाता और मैं ही ज्ञेय वो व्यवहार नहीं है, प्रथम अज्ञान है। अभेद होने के बाद भेद का नाम व्यवहार पड़ता है। तो मैं ज्ञाता और मैं ज्ञेय, इतना भेद में भी साध्य की सिद्धि नहीं होती है। तो मैं ज्ञाता, आहाहा! और चौबीस तीर्थंकर की प्रतिमा, नसिया में मैंने दर्शन किया वो मेरा ज्ञेय, वो तेरा ज्ञेय नहीं है भूल गया तू। आहाहा! वो सचमुच तेरा ज्ञेय नहीं है। हाँ! जो तेरा ज्ञेय हो तो उसको जानने से आनंद आना चाहिए। इसमें शास्त्र की जरूरत नहीं है। आत्मा की साक्षी होती है। कि अनंत अनंत काल से साक्षात तीर्थंकर भगवान के समोशरण में गये और उसको ज्ञेय बनाया, आत्मा ज्ञाता और

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

भगवान मेरा ज्ञेय है, तीर्थंकर परमात्मा। आहाहा! वो ज्ञान की पर्याय का व्यवहार खड़ा हो गया, निश्चय गायब हो गया। आत्मदर्शन नहीं होता उसमें।

तो '**इस प्रकार यहाँ इन दोनों के तात्विक संबंध का विचार करते हैं।**' ज्ञाता और ज्ञेय, ज्ञाता इधर और ज्ञेय ये (पर) है, तो इसका तात्विक संबंध पारमार्थिक संबंध सच्चा संबंध क्या है? ये सच्चा संबंध है कि झूठा संबंध है? परीक्षा करके निर्णय करते हैं। '**यदि चेतयिता**...' ये तर्क लगाया, यदि जो चेति याने जाननेवाला ये आत्मा है, जाननहार है, करने की बात तो एजेंडा पर है ही नहीं। और ज्ञायक में भी नहीं है और ज्ञान की पर्याय में करने की बात तो है ही नहीं। अभी रहा जाननहार, आत्मा। और उसकी ज्ञान की पर्याय उसमें ज्ञान की क्रिया होती है। वो ज्ञान की क्रिया का विषय क्या है? जो पर विषय है तो अज्ञान है और ज्ञान का विषय बदलकर स्व आता है, तो अनुभूति होती है।

'**यदि चेतयिता**..' आहाहा! अभी तो करने के अंदर उलझ रहा है। उलझ रहा है ना। विपरीत, ये करना और ये नहीं करना। ये छोड़ना, ये ग्रह्यना। आहाहा! प्रभु! वो तो दिल्ली बहुत दूर है। जो आत्मा का स्वभाव शुभाशुभ भाव नहीं होने पर भी, उसके ऊपर सावधानी रखते हैं। परिणाम तो देखना चाहिए ना। अपने दोष तो देखना चाहिए ना। आहाहा! दोष देखना वो विवेक है। भाई! दोष देखना उसका नाम ही अविवेक, अज्ञान, मिथ्यात्व है। तू निर्दोष आत्मा को देखने की बात भूल जाता है। और दोष को यानि कषाय का दर्शन रोज उठकर करता है। कषाय है ना, शुभभाव कषाय है कि नहीं? कि वीतराग भाव है? आहाहा!

पहले के काल की बात थी, अभी तो मालूम नहीं है। फजलमें में उठे न फजलमें, तो कोई ऐसा झाड़ू मारनेवाला, हरिजन, साफ करनेवाला (दिख जाये) तो अरेरे! मेरा दिन बिगड़ गया आज। क्या हो गया तेरे को? समझे? कि वो झाड़ूवाला (दिखाई दे गया) दिन बिगड़ गया। अच्छा! तो वो कषाय का दर्शन करता है, उसमें भव बिगड़ जाता है। उसमें तो दिन बिगड़ा, कषाय करने में तो भव बिगड़ा ही है। करने की बात तो दूर रहो, मगर कषाय को जानने से आहाहा! भव बिगड़ गया तेरा। अभी भव सुधारना हो तो मौका है, टाइम है अभी। अन्तर्मुहूर्त का टाइम आयुष्य हो तो बस है। अन्तर्मुहूर्त का टाइम हो, आयुष्य इतना तो है, इतना तो है। है कि नहीं? आहाहा! अब ये विषय बदल दे तेरा, ज्ञान की पर्याय का विषय जो राग द्वेष है, ज्ञान में करने की बात तो है ही नहीं। आहाहा! ज्ञान का स्वभाव तो जानना है, करने का स्वभाव नहीं है। और जानने के स्वभाव में आने पर भी कषाय को सावधानी देती है। इतना आज दोष हुआ पाप किया, पुण्य किया काल रात को आया था ना।

सर्वे (survey) तो निकाल कि सारे दिन में कितना पुण्य और कितना पाप किया। और पाप और पुण्य के अंदर सावधानी रखता है। ऐसा पाठ है। आचार्य भगवान का ऐसा पाठ है पंचास्तिकाय में।

व्यवहार के पक्ष के नाम में जब उसका खुलासा करते हैं, तो व्यवहार के पक्षवाला जीव सारे दिन चौबीस घंटे, उसमें सावधान रहता है, कि कहीं पाप तो न लग जाये। ये क्रिया में कहीं पाप आ जाये नहीं। आहाहा! सारे दिन पाप न आवे, उसकी सावधानी रखता है। और पुण्यभाव शुभभाव आता है तो उसको अंदर उल्लास और हर्ष आता है, आत्मा का नाश होता है। आहाहा! उसको देखने की चक्षु बंद कर दे। आहाहा! एक दफे तो बंद कर। पहला गुणस्थान तो है ही, पहले में से कोई शून्य तो, गुणस्थानातीत तो

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

होनेवाला नहीं है। ट्राई तो कर, कोशिश तो कर, एक दफे पर को जानना बंद कर दे। आहाहा! तेरे भगवान आत्मा का दर्शन हो जायेगा। ये दर्शन करने की विधी है!

तो '**चेतयिता पुद्गल आदि का हो तो क्या हो - इसका प्रथम विचार करते हैं।**' यानि आत्मा परपदार्थ को जाननेवाला हो, जाननेवाला हो, तो क्या गुण आता है कि दोष आता है, क्या है, अपने विचार करो। साथ में बैठकर, विचार। "ऊंडी मीमांसा" गहरायी से विचारना। '**जिसका जो होता है वह वही होता है। जैसे आत्मा का ज्ञान होने से ज्ञान वह आत्मा ही है;-ऐसा तात्विक संबंध जीवित(विध्यमान) होने से...**' विद्दमान है। आहाहा! आत्मा का ज्ञान ही होता है सबको। आत्मा का ज्ञान होने से ज्ञान सो आत्मा है। राग का ज्ञान होने से आत्मा रागमयी दृष्टि में आ जाता है। अज्ञान है वो तो। राग का ज्ञान आजतक किसी को हुआ नहीं। छह द्रव्य का ज्ञान आजतक किसी को हुआ नहीं। सबको आत्मा का ज्ञान हुआ है भूतकाल में, वर्तमान में हो रहा है और भावीकाल में भी आत्मा का ज्ञान होगा। क्योंकि ज्ञान और ज्ञायक अभेद है। जो भेद है उसको जानता नहीं है। अभेद को जानता है। आहाहा! अभेद को जानने से अभेद होता है। और बाद में अभेद सादि अनंत काल रह जाता है।

आज आखिर का है ना। आहाहा! हरखजमण। समझे? हमारे वहाँ हरखजमण। आहाहा! बादाम का हलवा। मूंग की दाल का हलवा आया इधर। जीमा न सबने? मगर ये बादाम का हलवा है। आहाहा! क्या फरमाते हैं? एक दफे तेरा पक्ष छोड़ दे। करने का पक्ष तो उसमें तो दिवासली लगा दे। भाईसाहब कहते हैं। दीवासली लगा दे। आहाहा! जैनदर्शन में करने की बात तो है ही नहीं। हाँ! शास्त्र में बहुत जगह आती है, वो व्यवहार दर्शाया है, निषेध करने के लिये। व्यवहार दर्शाते हैं, निषेध करने के लिये। उपादेय करने के लिये व्यवहार दर्शाया नहीं है। आहाहा!

व्यवहारनय संयोग का ज्ञान कराता है। निश्चयनय स्वभाव का ज्ञान कराता है। क्या कहा? फिर से। व्यवहारनय संयोग का ज्ञान कराता है कि परिणाम है, कर्म है, शरीर है, ये सब है। व्यवहारनय संयोग का ज्ञान कराते हैं। यहाँ तक उसकी लिमिट है। वो स्वभाव के ज्ञान करने में वो कामयाब नहीं होता। और निश्चयनय जो स्वाश्रित वो स्वभाव का ज्ञान कराता है। व्यवहारनय संयोग का ज्ञान कराता है। संयोग का ज्ञान कराता है। नय का धर्म जानना है, करना नहीं है। जो नय में करना लगाया, तो अज्ञान हो गया। नय का प्रयोग जानने तक रख। भले निश्चयनय, व्यवहारनय दो नय हैं, सर्वज्ञ भगवान ने कहा है। मगर नय का धर्म तो जानना है। भेद को जाने सो व्यवहारनय। अभेद को जाने सो निश्चयनय। और भेद को करे, नय ही नहीं रही। आहाहा! वो तो एजेंडा पर है ही नहीं। आहाहा! करने की बात तो, ईश्वर (को) कर्तावादी मानता है उसके घर में है। उसके घर में है। हमारे घर में वो बात नहीं है। (वो) अन्यमति है।

आत्मा को कर्ता मानता है, वो स्वमत नहीं है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान और ज्ञान का स्वभाव जानना। किसको जानना, (वो) बाद में रख। आत्मा का स्वभाव ज्ञान और ज्ञान का स्वभाव जानना। अभी किसको जानना और किसको नहीं जानना, उसमें रहस्य है, वो बात इधर आती है।

'...**जैसे आत्मा का ज्ञान होने से ज्ञान वह आत्मा ही है। ऐसा तात्विक संबंध...**' जीवंत। आहाहा! जीवंतस्वामी, सीमंधर भगवान हैं ना। जीवंतस्वामी, ऐसा बियावर में लिखा है। बियावर में सीमंधर भगवान के बियाना, बियाना। बियाना में एक सीमंधर भगवान की प्रतिमा गुरुदेव ने बताया कि ये सोनगढ़

वाला ने सीमंधर भगवान की प्रतिमा का नया चीला(चलन) पाड़ा। नया चलन नहीं है, पांच सौ साल पहले उसका संवत लिखा है उसमें। पांच सौ साल पहले का सीमंधर भगवान की प्रतिमा, बयाना, में अभी विद्यमान है। उसमें लिखा है जीवंतस्वामी। हैयात हैं अभी। अभी सीमंधर भगवान हैयात है। अभी भी स्वर्ग का देव वहाँ समवसरण में जाता है। आहाहा! सीमंधर नाथ प्रभु विराजमान है। आहाहा!

तो आचार्य भगवान फरमाते हैं कि भाई! तेरे ज्ञान में परपदार्थ जानने में आता है, वो ज्ञेय है और मैं ज्ञाता हूँ, वो भ्रांति है। व्यवहार नहीं है। ज्ञाता भी आत्मा और ज्ञेय भी आत्मा। इतना भेद करने से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता है। तो अभेद में भेद करना सो पाप है और जो भिन्न है वो मेरा ज्ञेय है, वो तो पाप का बाप हो गया। वो तो पाप का बाप हो गया। आहाहा!

अभेद में भेद करना, साधक, किसी को समझाने के लिये वो पुण्य तत्व है, धर्म तत्व नहीं है। मगर अभेद का भेद जो नहीं है, और भिन्न है वो उसको ज्ञेय बनाना, वो तो पाप का बाप है। पुण्य भी पाप और..। आहाहा! पाप को पाप तो सभी कहें, पुण्य को पाप कोई विरला योगी कहते हैं। मिथ्यात्व का पाप किसी को पाप ही नहीं लगता। ये तो जब ज्ञानी का अनुभवी का जन्म होता है, तब ये मिथ्यात्व की चर्चा चलती है। तहाँ तक तो पुण्य और पाप, पुण्य और पाप हिंसा, झूठ, चोरी उसका नाम पाप। अहिंसा आदि का भाव पांच महाव्रत का, देशव्रत का भाव पुण्य। और पाप और पुण्य दो भाव चलते थे। यानि आस्रव बंध चलते थे, संवर आया नहीं।

'...**होने से, चेतयिता यदि पुद्गलादि का हो तो**...,' यानि पुद्गल को जाने आत्मा ऐसा स्वभाव हो तो '**चेतयिता वह पुद्गल आदि होवे।**' आहाहा! ये ज्ञाता परज्ञेय को जाने, तो ये दृष्टि में ये ज्ञेय ज्ञायक संकर दोष हो गया। ये ज्ञेय से भिन्न ये ज्ञेय जानने में नहीं आया, ये ज्ञेय से भिन्न ये ज्ञेय जानने में नहीं आया, ज्ञान में, और ये ज्ञेय जानने में आता है तो ज्ञान और ज्ञेय की एकत्वबुद्धि हो जाती है। आहाहा! जो जिसको जाने उसकी प्रतीति होती है। जानेलानूं श्रद्धान, गुजराती में। जाने हुए का श्रद्धान हो जाता है। जानना बंद कर दे तो मिथ्यादर्शन भी बंद हो गया। आहाहा! आत्मा को जान तो जाने हुए का श्रद्धान इधर आहाहा! सुलटा हो जाता है।

'**पुद्गलादि का हो तो चेतयिता वह पुद्गलादि होवे (अर्थात चेतयिता पुद्गलादि स्वरूप ही होना चाहिए, पुद्गलादि से भिन्न द्रव्य नहीं होना चाहिए); ऐसा होने पर चेतयिता के** यानि ज्ञाता के **स्वद्रव्य का उच्छेद हो जायेगा।**' मैं परद्रव्य को जानता हूँ, उसका नाम भ्रांति और मिथ्यात्व न लिखकर, एक आगे की सूक्ष्म बात करते हैं। आहाहा! मैं पर को जानता हूँ ऐसी मिथ्याबुद्धि से आत्मा का ही नाश हो गया। दृष्टि में आत्मा रहा नहीं, तो उसका नाम नास्तिक है। अध्यात्म में तो सम्यग्दृष्टि को आस्तिक कहते हैं। मिथ्यादृष्टि को नास्तिक। आहाहा! अपनी अस्ति को जिसने स्वीकार नहीं किया और जिसके साथ अपना कोई प्रयोजन नहीं है, सारे दिन उसकी पर की प्रसिद्धि ज्ञान करे, वो नास्तिक हो गया। आहाहा!

सम्यग्दर्शन का विषय तो सबको आ गया, बाद में सम्यकदर्शन क्यों नहीं होता है? ऐसा प्रश्न बहुत आता है। इसका खुलासा इसमें है कि ज्ञान की पर्याय का निश्चय जब तक नहीं प्रगट होगा तब दृष्टि का विषय आने पर कोरा और कोरा रह जायेगा। दृष्टि में आयेगा नहीं। द्रव्य का निश्चय-परिणाम मात्र से भिन्न, ज्ञान की पर्याय का निश्चय-केवल शुद्धात्मा को जानना बस। ज्ञायक को जानना उसका नाम ज्ञान की पर्याय

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

का निश्चय है। आहाहा! पर को जानना नहीं और स्वपर को जानना निश्चय नहीं है। क्योंकि स्वपर में अभेद नहीं होती है ज्ञान की पर्याय। क्या कहा? संध्या!

आदरणीय बाबूजी : स्व में ही अभेद होती है।

पूज्य लालचंद भाई : स्व में ही अभेद होती है, तो स्व का ही ज्ञान उसका नाम निश्चय है। आहाहा! जिसके साथ ज्ञान की पर्याय कथंचित् अभेद होती है उसका नाम ज्ञान की पर्याय का निश्चय है। राग के साथ अभेद नहीं होती है, इसलिए ज्ञान की पर्याय का नाम निश्चय नहीं होता है। वो तो अज्ञान हो गया। और स्वपरप्रकाशक स्व और पर दो को जाने, ये यथार्थ हो तो स्वपर के साथ अभेद होना चाहिए मगर स्वपर के साथ ज्ञान की पर्याय तीन काल में अभेद नहीं होती है। अकेला स्व में अभेद होती है, तो ज्ञायक तो ज्ञायक वो आत्मा है। आहाहा! अभी आयेगा।

स्वपरप्रकाशक क्यों स्वभाव नहीं? वो प्रमाण है। नय नहीं है। प्रमाण का विषय हो गया। ज्ञान की पर्याय दो को जाने तो क्या दो में अभेद होती है? तीन काल में अभेद नहीं होती है। एक में ही अभेद होती है। एक को जानने से एक में अभेद होता है। दो को जानने से किसी में अभेद होता नहीं, अज्ञान बन जाता है। आहाहा! ये भिण्ड की शिविर अच्छी चली। आहा! भिण्ड भाग्यवान है ऐसा लगता है। भिण्ड में सब बाहर से आया, वो भिण्डवाला हो गया ऐसा ही समझना समझे। पांच-छह दिन रहे बाहर गांववाला वो भी भिण्ड ही रहता है। भिण्ड ही रहता है। उसका गांव में रहता है कि इधर रहता है। वो तो भिण्डवाला हो गया सब। आहाहा! अभेद समझे? भेद नहीं कि ये भिण्डवाला नहीं, ये वहाँ से आया, ये वहाँ से आया, ये करेली से आया और वहाँ से आया. ऐसा नहीं है। आहाहा!

ऐसे भगवान आत्मा का दर्शन ज्ञान की पर्याय के निश्चय से होता है। ख्याल ही नहीं कि ज्ञान की पर्याय का निश्चय क्या। चर्चा ही नहीं चलती है। क्या कहा? इस जाति की चर्चा ही नहीं चलती है। भाईसाहब ने कहा कि नहीं चलती है। बोलो! चले तो काम हो जाये। चलाने जैसी है। विद्वान को वो चलाना चाहिए कि ज्ञान की पर्याय का निश्चय केवल स्वप्रकाशक है। स्व को ही प्रसिद्ध करता है पर को प्रसिद्ध नहीं करता है। तो ज्ञान अंतर्मुख होकर आत्मदर्शन हो जाता है। आहाहा! चलेगी ऐसा लगता है। मेरे को तो लगता है गुरुदेव की जो वाणी है, उसने सत्य का प्रकाशन, उद्घाटन, प्रकाशन किया है, वो सत्य का भड़का होनेवाला है। तभी अभी थोड़ा दब गया है ऐसा लगता है, मगर सत्य कभी दबनेवाला नहीं है और कोई इसको दबा सकता नहीं है। ये तो भड़का होनेवाला है। (गुरुदेव का जयकारा)

किसी को, कभी-कभी अभी गड़बड़ होती है तत्व के बारे में ऐसा है वैसा नहीं है। भले! गड़बड़ होये कभी थोड़े टाइम के लिए है, बाद में तो भड़का होनेवाला है। आहाहा! ऐसा जीव भी निकलेगा, ऐसा जीव भी निकलेगा, जीव नहीं जीवों निकलेगा, जीव अनेक, अनेक पकेंगे! ऐसी वाणी है चमत्कारिक इसकी। पंचमकाल के आखिर तक ये गुरुवाणी जीव को सम्यग्दर्शन में निमित्त होनेवाली है। आहाहा! इतना स्पष्टीकरण कर गए, आहाहा! पक्षपात में पड़ना नहीं। पक्षपात में पड़ने से ज्ञान कुंठित हो जाता है। ये शब्द चाहिए। मंद नही, कुंठित हो जाता है। पक्षपात में बिगड़ जाता है। रागद्वेष की प्रवृत्ति हो जाती है, पक्षपात में नहीं पड़ना भैया। ये मनुष्यभव फिर से कब मिले उसका ठिकाना नहीं है। आहा! मौका आ गया है, सब अवसर आ गया है। आहाहा! मनुष्य भव मिला, देव-गुरु-शास्त्र मीले कुन्दकुन्द भगवान की

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

वाणी मिली, उसका स्पष्टीकरण करनेवाले गुरुदेव मिले, आहाहा! इतना बस है। कभी-कभी बहुत दुख होता है कि जीव क्या करते हैं? पक्षपात में पड़ गया तत्व रह गया, तत्व एक बाजू रह गया। आहा!

आत्मा के साथ पर को किसी का संबंध नहीं है ऐसा करके द्रव्य और पर्याय वर्तुल में आकर पर्याय को जानना बंद कर दे और द्रव्य को जाने, उसका नाम ज्ञान की पर्याय का निश्चय है। आहा! '**चेतयिता के स्वद्रव्य का उच्छेद हो जायेगा**।' मैं पर को जानता हूँ नास्तिक हो गया तू। बड़ा दोष है। छोटा दोष नहीं है।

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com